National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(61): 233-236
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

लक्ष्मी नौटियाल
शोधछात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग,
हिमालयीय विश्वविद्यालय,
देहरादून

Correspondence:
लक्ष्मी नौटियाल
शोधछात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग,
हिमालयीय विश्वविद्यालय,
देहरादून

मानस संवाद वर्तमान शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में

लक्ष्मी नौटियाल

राम की वंदना, 'मन, वचन, कर्म से भगवान श्रीराम के चरण कमल में नमस्कार करता हूँ'। कैसे हैं वे चरण? कोई उपमा नहीं मिली कह दिया 'सब लायक', सब प्रकार से योग्य जो हैं, उन चरणों में मैं वन्दन करता हूँ। 'राजिवनयन', ठाकुर के नयन, कमल के समान; 'धरें धनु सायक' हाथ में धनुष- बाण हैं लेकिन नयन, कमल के समान हैं। तो वे धनुष-बाण किसी को दिखाकर, किसी को भयभीत करने के लिए नहीं है 'भगत बिपति भंजन सुखदायक' भक्तों की रक्षा के लिए हैं, विपत्तियों से उसकी रक्षा के लिए, सुख प्रदान करने के लिए।

जहाँ आतंकवाद फैला हुआ हो, वहाँ सेना के सैनिक आ जाते हैं 'पुलिसफोर्स' आ जाती है, तो हम लोगों को थोड़ा सुख मिलता है कि अब हमारी सुरक्षा की व्यवस्था हो गई। उसी प्रकार भगवान श्रीराम के हाथ में धनुषबाण देखकर भक्तों को सुख मिलता है कि हमारी रक्षा के लिए प्रभु खड़े हैं, हमें काहे की चिन्ता, हमें किसका डर!' 'भगत विपति भंजन सुख दायक'।

सीताराम जी की अलग-अलग वंदना करने के पश्चात गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक दोहे में दोनों की अभिन्न रूप से भी वंदना की है मानो गोस्वामी जी कह रहे हैं कि इन दोनों को, दो रूपों में मत देखना

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।[1]

जिस प्रकार वाणी और उसका अर्थ भिन्न होते हुए भी अभिन्न है, एक हैं; जिस प्रकार जल और जल में उठने वाली तरंगें भिन्न होते हुए भी अभिन्न है, उसी प्रकार सीताराम जी देखने में दो हैं किन्तु वास्तव में हैं 'अभिन्न'। सीताराम जी की वन्दना की और उसके बाद एक बड़ा ही क्रान्तिकारी कथन, निवेदन, गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वारा। अब वंदना करते हैं भगवान श्रीराम के नाम की।

राम की वंदना तो एक चौपाई में कर ली, लेकिन नाम की वंदना दो पन्ने भरकर के की। नाम की गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़ी महिमा गाई है। निर्गुण-सगुण के झगड़े में गोस्वामी जी नहीं पड़े हैं। किसी ने पूछा - निर्गुण बड़ा है कि सगुण बड़ा है? तुलसीदास जी ने कोई तीसरा ही उत्तर दिया 'न निर्गुण न सगुण'। बोले, "मोरें मत बड़ नामु दुहू तें" दोनों से बड़ा है उनका नाम और उस नाम का आश्रय करते हुए गोस्वामी जी ने यह यात्रा की है।

भरद्वाज और याज्ञवल्क्य के संवाद जीवन के विषमवाद को दूर कर देते हैं तो वर्तमान शिक्षा के परिपेक्ष्य के संवाद बहुत महत्वपूर्ण है।

जागबलिक जो कथा सुहाई।
भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई।।
कहिहउँ सोइ संबाद बखानी।
सुनहुँ सकल सज्जन सुखुमानी।।[2]

सभी धर्मग्रन्थ चाहे वह 'रामायण' हो, चाहे 'भागवत' हो, 'महाभारत' हो या 'भगवद्गीता' हो, यह सभी संवाद के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। 'गीता', कृष्णार्जुन संवाद है, हम प्रत्येक अध्याय के अंत में पढ़ते हैं- 'इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे' - 'गीता', 'कृष्णार्जुनसंवाद' है। 'श्रीमद्भागवत' - 'शुक-परीक्षित संवाद' है या 'सूत- शौनकादिकों' का संवाद है या 'विदुर-मैत्रेय संवाद' है। 'श्रीरामचरितमानस', 'भुशुण्डि और गरुड़ का संवाद है या तो 'भवानी-शंकर का संवाद' है या भरद्वाज और याज्ञवल्क्य का संवाद है।

मानस संवाद वर्तमान शिक्षा में

यह संवाद है पति पत्नी का, यह संवाद है 'वक्ता-श्रोता' का, यह संवाद है 'गुरु-शिष्य' का जो शास्त्र बनकर के, हम पर शासन करने, हमारे जीवन-साफल्य का मार्गदर्शन हमें देने के लिए, हमारे पास आया है।

तो 'कहिहउँ सोइ संबाद बखानी' शंकर जी ने लिखा है यह लिखने के बाद उन्होंने कागभुशुण्डि को दिया, उनसे याज्ञवल्क्य को मिला, याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को सुनाया और वह संवाद, तुलसीदास जी कहते हैं - मैंने अपने गुरुदेव से सुना 'सूकरखेत' में, वाराहक्षेत्र में, मैं उस वक्त बालक था - "समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।" बालक था, चंचल था तो बहुत समझ में नहीं आई यह कथा, लेकिन गुरुदेव ने मुझ पर कृपा करके बार-बार मुझे यह संवाद सुनाया, समझाया। सुनना और समझना ये दोनों अलग-अलग बात हैं। गोस्वामी जी तो कहते हैं सुनने के बाद यदि समझना चाहते हो तो तीन शर्त हैं - तीन बातें चाहिए - एक तो श्रद्धा का बल चाहिए, दूसरे संत का मार्गदर्शन चाहिए और तीसरा प्रभु के चरणों में प्रेम चाहिए। यह तीन बातें आवश्यक है-

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।।[3]

तो श्रद्धा का बल न हो, संत का मार्गदर्शन न हो और प्रभु के चरणों में अनुराग न हो तो कथा हम सुन भले ही लें, हम समझ नहीं सकते। गुरुदेव की कृपा से धीरे-धीरे कथा मेरी समझ में आई, आज उसी कथा को 'भाषाबद्ध करबि मैं सोई' - मैं भाषाबद्ध कर रहा हूँ। बोले, क्यों? - 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई', मेरे मन को प्रबोध हो, मन को बोध मिले, संसार को समझाने के लिए नहीं, अपने मन को समझाने के लिए, मैं यह भाषाबद्ध कर रहा हूँ। संतों ने संसार को समझाने की चेष्टा नहीं की अपने मन को समझाया है और जिसने अपने मन को समझाया, समझ लो उसने दुनिया को समझा लिया। बाकी दुनिया - राम आये और गये, कृष्ण आये और गये, दुनिया वैसी की वैसी! नामुमकिन है कि दुनिया अपनी मस्ती छोड़ दे!

तुलसी, 'अपने मन को बोध मिले' इस हेतु से भाषाबद्ध करते हैं। भगवान शंकर के चरणों में नमस्कार करके, अयोध्या में 'श्री सरजू' जी के तट पर राम कथा का आरम्भ किया है गोस्वामी जी ने। जिस दिन आरम्भ किया वह तिथि लिखी है-चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि और मंगलवार -

संबल सोरह सै एकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।।[4]

भगवान नारायण के चरणों में मस्तक झुकाकर हरिगुणगान कर रहा हूँ। संवत् सोलह सौ इकत्तीस "नौमी भौम बार मधुमास" 'चैत्रमास' 'शुक्ल पक्ष' 'नवमी तिथि' 'भौमवार' 'संवत्, मास, पक्ष, तिथि, वार, सब बताया गोस्वामी तुलसीदास जी ने कब आरम्भ किया? यह तिथि लिखी है, लेकिन कब समाप्त किया, यह नहीं लिखा है, इसका एक संकेत यह भी है कि जीवन में सत्संग का आरम्भ ही होना चाहिए, अंत नहीं। भजन आरम्भ हो, लेकिन भजन का अंत कभी भी नहीं, जब तक जीवन चलता रहे, रामकथा चलती रहे। जब तक जीवन चलता रहे, भजन चलता रहे, इसलिए अंत की तिथि नहीं लिखी है गोस्वामी जी ने। चैत्रमास शुक्लपक्ष और नवमी तिथि मतलब - 'रामनवमी'-

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।।[5]
सादर सिवहि नाइ अब माथा

राम जन्मोत्सव है सारे तीर्थ उस दिन अयोध्या में आते हैं सरयू जी में स्नान करने, रामजन्म महोत्सव को मनाकर गोस्वामी जी मानस गान के लिए तैयार हो गये। नामाभिधान किया इस ग्रंथ का-

रामचरितमानस एहि नामा।
सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा।।[6]

इसका नाम है 'रामचरितमानस' जिसका श्रवण करते ही मनुष्य विश्राम को प्राप्त करता है, विश्राम का अनुभव करता है। इसका नाम 'रामचरितमानस'। क्यों

रचि महेस निज मानस रखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।[7]

"तातें रामचरितमानस बर" भगवान शंकर ने इसकी रचना की। रचना करने के उपरान्त उन्होंने अपने मानस में रखा और उचित अवसर पाकर उन्होंने उमा को सुनाया, इसलिए इसका नाम है 'रामचरितमानस'।

मानस सरोवर - मान सरोवर

कुछ उपमायें मानस को गोस्वामी तुलसीदास जी देते हैं - मानस शशिकिरण समान है, मानस कलिकाल में कामधेनु गाय है, मानस मंदांकिनी है आदि-आदि।

मानस तो एक उपमा है 'मानस सरोवर' की। जिस प्रकार हिमालय में 'मानसरोवर' उसी प्रकार राम प्रेमियों के लिए यह 'मानव सरोवर'

है। जिस प्रकार 'मानसरोवर' की यात्रा कठिन है उसी प्रकार इस 'मानससरोवर' की यात्रा भी कठिन है। सरोवर की उपमा देते हैं गोस्वामी तुलसीदास जी और आप जानते हैं कि 'सरोवर' के चार घाट होते हैं। पुराने जमाने में राजे-महाराजे या श्रीमंत लोग सरोवर के घाटों को बनवाते थे - चार घाट हुआ करते थे और अलग-अलग व्यवस्था हुआ करती थी। एक घाट पर पुरुषों के लिए, एक घाट पर महिलाओं के लिए, एक घाट पर राजपरिवार के लोगों के लिए और एक घाट अलग से पशु-पक्षियों के लिए आरक्षित रखा जाता था, वहाँ दूसरे कोई लोग नहीं जाते थे। ऐसी व्यवस्था थी।

'मानससर' के चार घाट

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं इस 'मानस सर' के भी चार घाट हैं - एक घाट है 'ज्ञान' का, दूसरा घाट है 'भक्ति' का, तीसरा घाट है 'कर्म' का, चौथा घाट है 'शरणगति' का। चारों घाटों पर अलग-अलग वक्ता बैठे हैं और सुना रहे हैं मानस। 'ज्ञान' के घाट पर भगवान शिव जी बैठे हैं सुना रहे हैं भवानी को, 'भक्ति' के घाट पर भुशुण्डि बैठे हैं सुना रहे हैं गरुड़ जी को, 'कर्म' के घाट पर याज्ञवल्क्य महाराज विराजे हैं और वे कथा सुना रहे हैं श्रीभारद्वाज मुनि को और 'शरणागति' के चौथे घाट पर स्वयं बैठे हैं गोस्वामी तुलसीदास जी और वे सुना रहे हैं अपने मन को।

आध्यात्मिक संस्कृति के शैक्षिक मूल्य

धर्म दृष्टि को संकुचित, संकीर्ण बनाने वाला नहीं है, धर्म तो दृष्टि को विशाल बनाने वाला है। अपने इष्ट को सबमें देखते हुए सबको वन्दन। किसी का भी विरोध न हो। नरसी गाता है-

शाक्त, शैव, वैष्णव किसी में कोई झगड़ा नहीं होना चाहिए आपस में क्योंकि तत्व के रूप में कोई भेद नहीं, अनेकता में एकता और एकता में अनेकता यह ही हमारी अध्यात्मिक संस्कृति है। हमारे राष्ट्र की भी यही संस्कृति है। हमारा अध्यात्म विज्ञान ऐसी बातों से भरा पड़ा है। अनेकता में एकता और एकता में अनेकता और हमारी एकता कैसी है खरबूजे जैसी बाहर से भले ही अलग-अलग दिखाई दें लेकिन अन्दर से एक। संतरे जैसी नहीं है कि बाहर से एक और अन्दर से सब अलग-अलग, खरबूजे जैसी है हमारी एकता।'

सती का पार्वती के रूप में अवतरण

सतीं मरत हरि सन तरु मागा।
जन्म-जनम सिव पद अनुरागा।।[8]

जब से सती गई हैं तब से शंकर जी तो भजन में मग्न हो गये हैं और सती ने मरते समय शिव चरणों में अनुराग का वरदान माँगा है। श्रीहरि से। इसलिए,

तेहि कारन हिसगिरि गृह जाई।
जनमीं पारबती तनु पाई।।[9]

हिमाचल के घर में पार्वती के रूप में 'प्रकट' हुई। जब से पराम्बा पुत्री बनकर हिमाचल के घर में प्रकट हुई है तब से हिमाचल के सुख और सम्पत्ति में अभिवृद्धि होने लगी, अनेक ऋषि मुनियों ने आकर हिमालय में जहाँ-जहाँ आश्रम बनाये हैं, सब लोग भजन करने लगे। 'ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' चारों ओर यह 'नर्वाण मंत्र' सुनाई पड़ने लगा। सब लोग पराम्बा की आराधना में लग गये। नारद जी आते हैं। नारद जी से भविष्य कथन कराते हैं। नारद जी ने बड़ी गूढ़ और मृदु वाणी में पार्वती का भविष्य बताया, केसा पति मिलेगा इसको-

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।[10]
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।।[11]

गिनती करिये तो दस हैं- 'अगुन', 'अमान', 'मातु पितु हीना', 'उदासीन', 'सब संसय छीना', 'जोगी', 'जटिल', 'अकाम नगन', 'अमंगल बेष' 'अस स्वामी एहि कहैं' - दश हुए; ये दस जिसमें हैं ऐसा पति इसको मिलेगा और देखिये! बड़ी दार्शनिक बात है कि गुण अपने आप में न सद्गुण होते हैं न दुर्गुण होते हैं। गुण तो बस गुण होते हैं लेकिन वह सद्गुण और दुर्गुण कब बनते हैं, बोले - गुण का धारण करने वाला कौन है? उस पर निर्भर करता है। जैसे असंतोष ब्राह्मण के लिए अवगुण है लेकिन असंतोष क्षत्रिय के लिए गुण है। 'असंतुष्टद्विजा नष्टा' - असंतुष्ट द्विज का नाश होता है, ब्राह्मण के लिए यह अवगुण है। संतोष ब्राह्मण के लिए गुण है इसलिए 'भागवत' में जब बलि के यज्ञ में गये ब्राह्मण बनकर के वामन, तो वामन जी कहते हैं-

"यदृच्छयोपपननेन संतोषो मुक्तये स्मृतः"
"यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते"[12]

ये शब्द सुनने लायक हैं। संतोष ब्राह्मण का सद्गुण है लेकिन संतोष राजा के लिए दुर्गुण है 'असंतुष्टद्विजा नष्टा', असंतुष्ट द्विजों का नाश होता है और सुंतुष्ट राजा का नाश होता है। राजा को कभी संतुष्ट नहीं होना चाहिए। गुण अपने आपमें न सद्गुण होते हैं न दुर्गुण होते हैं उसकां धारण करने वाला कौन है? उस पर निर्भर है कि वे दुर्गुण बन जाएँ कि सद्गुण बन जाएँ।

ये दशों गुण जिन का वर्णन नारद ने किया यदि संसारी पुरुष के लिए प्रयुक्त किये जाएँ, ये दशों गुण किसी संसारी पुरुष में देखे जाएँ तो अवगुण हैं लेकिन महादेव जी में देखे जाएँ तो सद्गुण हैं, त्रिगुणातीत हैं भोले बाबा, प्रकृति के गुण इनको बाँध नहीं सकते। 'अमान'- क्योंकि माथे पर ज्ञान की गंगा है और-

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।

देख ब्रह्म समान सब माहीं।।[13]

'मातु पितु हीना'- अरे! ये ही जगत् के पिता है, इनके पिता कौन हो सकते है? "वन्दे जगत्कारणं" ये 'जगत्कारण' है और कारण का कारण कौन हो सकता है? 'उदासीन'-हमारे भोले बाबा का व्रत है- उदासीन। हमारे यहाँ पूरा उदासीन सम्प्रदाय है- संसार के सभी द्वन्द्वों के प्रति उदासीन। 'सब संसय छीना'- संशय कैसे रह सकता है भोले बाबा में क्योंकि भोले बाबा हैं ही विश्वास के घनीभूत रूप। जो विश्वास का घनीभूत हो वहाँ संशय के रहने का कोई प्रश्न ही नहीं है। 'जोगी' परमतŸ व से जुड़े हुए हैं। 'युज' धातु से 'योग' शब्द निष्पन्न होता है, उसका अर्थ है जुड़ना- युक्त होना। परमतŸ व से युक्त हो गये हैं, परमतŸ व से जुड़े योगी हैं। 'जटिल'- इनके मस्तक पर जटा है लेकिन जटा में गंगा है। जिस जटा से गंगा बह रही हो- भक्ति की गंगा या ज्ञान की गंगा, वह बड़ी सुन्दर है वह जटा। 'जोगी जटिल अकाम मन' काम भोले बाबा के पास जाए तो जल के राख हो जाए-

मानस सुनाना आरम्भ किया, यहाँ याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद के अन्तर्गत दूसरा संवाद शुरू हुआ-शिव और पार्वती का। तो, भगवान के अवतार के कारणों की चर्चा हुयी, महादेव जी ने अवतार-कारणों की चर्चा करते हुए पहले सनातन सिद्धान्त बताया, जो 'गीता' ने कहा है-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[14]

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।[15]

तद्नुसार भगवान का 'प्रागट्य' हुआ और उसके पश्चात महादेव जी ने रामावतार के पाँच कारणों की चर्चा की। 'बालकाण्ड' में यह सब सुन्दर चर्चा है। प्रभु के 'प्रागट्य' की ओर हमें जाना है। यह सारी चर्चा प्रभु के चरणों मंे समर्पित करते हैं। पाँच कारण बताए हैं और पाँच कारणों की चर्चा करके फिर अवतार की चर्चा। रामायण में रामजन्म से पहले रावण का जन्म है क्योंकि राम आ जाएँ तो रावण नहीं आ सकता लेकिन जहाँ रावण आ जाए तो फिर वहाँ राम आ सकते हैं। जहाँ प्रकाश हो वहाँ अन्धकार नहीं आ सकता लेकिन जहाँ अन्धकार हो वहाँ प्रकाश हो सकता हैं। इसलिए पहले रावण। रावण को भी तुलसीदास जी ने 'मण्डलीक मनि' कहा है-

मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र।।[16]

पादटिप्पणी

[1]बाल॰का॰दो॰ 18
[2]बाल॰का॰ 29-1
[3]बाल॰का॰दो॰ 38
[4]बाल॰का॰ 23-2
[5]बाल॰का॰ 33-3
[6]बाल॰का॰ 34-4
[7]बाल॰का॰ 34-6
[8]बाल॰का॰ 64-3
[9]बाल॰का॰ 64-3
[10] बाल॰का॰दो॰ 67
[11] बाल॰का॰ 66-4
[12] भाग 8-11-25, 26
[13] अ॰का॰ 14-4
[14] गीता॰ 4-7,8
[15] बाल॰ का॰ 120-6,4
[16] बाल॰का॰दो॰ 138